गीतिकाव्य : स्वरूप और विकास

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र

आधुनिक पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार कविता के दो भेद माने गये है –

(1) व्यक्तित्व–प्रधान अथवा विषयीगत (Subjective), और (2) विषय–प्रधान अथवा विषयगत (Objective)। इसी भेद को स्वीकार करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास ने भी कविता के दो भेद माने हैं – ''एक तो वह जिसमें कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करके अपने अनुभवों तथा भावनाओं से प्रेरित होता तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूँढ़ निकालता है, और दूसरा वह जिसमें वह अपनी अन्तरात्मा से बाहर जाकर सांसारिक कृत्यों और रागों में पैठता है और जो कुछ ढूँढ़ निकालता है, उसका वर्णन करता है। पहले विभाग को 'भावात्मक व्यक्तित्व–प्रधान' अथवा 'आत्माभिव्यंतक' कविता कह सकते हैं। दूसरे विभाग को हम 'विषय–प्रधान' अथवा 'भौतिक' कविता कह सकते हैं।'' इसके अनुसार कविता के दो मोटे भेद हुए – **(1) भाव–प्रधान, और (2) विषय–प्रधान।**

भाव–प्रधान कविता में कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों, भावनाओं और आदर्शों की प्रधानता रहती है। भाव–प्रधानता के कारण उसमें गीतात्मकता का विशेष स्थान रहता है। इसी कारण इसे गीति–काव्य कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'लिरिक' (Lyric)

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से काव्य के दो भेद किये गये हैं :

1– श्रव्य और 2–दृश्य। इनमें से निबन्धस के भेद से श्रव्य–काव्य के दो भेद माने गये है।–**प्रबन्ध काव्य** और **मुक्तक काव्य।** मुक्तक–काव्य में मन की किसी अनुभूति, भाव या कल्पना का चित्रण किया जाता है। इस मुक्तत–काव्य में भी दो भेद माने गये है– **1–पाठ्य–मुक्तक, 2–गेय–मुक्तक।** पाठ्य–मुक्तक में विषय की प्रधानता रहती है। उसके छन्द गेय की अपेक्षा पाठ्य अधिक है। गेय–मुक्तक में भावनाओं और वैयक्तिक अनुभूतियों के प्राधान्य के कारण रागात्मकता आ जाती है। वे स्वर, ताल तथा लय में बँधे होने के कारण गये होते हैं। **ये गेय–मुक्तक ही गीतिकाव्य या प्रगीत काव्य कहलाते हैं।** 'गीतिकाव्य' का शाब्दिक अर्थ है–वह काव्य, जो गाया जाए। परन्तु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। गीतिकाव्य वही होता है, जिसे गाते समय गाने वाला पूर्ण तन्मय हो उठे।

गीतिकाव्य की उत्पत्ति तभी होती है, जब भावों के आदेश से प्रेरित होकर निजी उद्‌गारों को काव्योजित भाषा में प्रकट किया जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकीआंतरिक अनुभूतियों तथा भावों को सजीव भाषा द्वारा साक्षात् कराने की क्षमता ही प्रगीत–काव्य की विशेषता है। व्यक्तित्व, भाच और अनुभूति की8 तीव्रता उसमें रागात्मकता का समावेश कर देती है। गीतिकाव्य की इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य कर महावेदव वर्मा ने गीतिकाव्य का विवेचन करते हुए लिखी है – ''सुख–दुख' की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने–चुने शब्दों में स्वी साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।'' अतः गीतिकाव्य के तीन प्रधान लक्ष्य हुए – (1) रागात्मकता (2) निजीपन और (3) अनुभूति की

प्रधानता। दूसरे शब्दों में, हम इन्हें – **गेयत्व, स्वानुभूति का भाव और कोमल भाव की सघनता** भी कह सकते है।

उपर्युक्त तीनों विशेषताएँ गीतिकाव्य का आभ्यन्तर विशेषता इस बात में है कि उसके भीतर आत्मा की – अपनी अनूभूति घनीभूत रूप में प्रकट हो। वर्णन चाहे किसी वस्तु का हो, पर गीति के भीतर आकर वस्तु का कल्पनागत वर्णन न रहकर कवि की अपनी अनुभूति के भीतर आया हुआ वर्णन हो जाता है। उसके भीतर कवि की आत्मा और भावनाएँ ही प्रतिबिम्बित और झाँकती हुई मिलेंगी। इस आधार पर **आत्मानुभूति को गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता माना जा सकता है।**

इस आत्मानुभूति के अन्तर्गत कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रकाशन उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का आधार अवश्य ग्रहण करता है, परन्तु वह आधार अलक्ष्य ही रहता है। कवि की सफल भावना हमारी अनुभूतियों और प्रेरणाओं को उकसाती है। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में –'कवि की पावन, शुद्ध पारदर्शी दृष्टि, वस्तु के भीतर कुछ ऐसे रहस्यपूर्ण और गुप्त तथ्य देखती है, जो हमारे लिए नवीन होकर भी सत्य तथ्यपूर्ण हैं। यह कवि की सूझ है, उसकी अन्वेषक शक्ति है, उसकी पवित्र व्यापक अनुभूति है और उसको साथ्ज्ञ लेकर चलने वाली कल्पना है, जो वर्णन को इतना अपना लेती है कि वस्तु अपनी – हृदय की संगी – हो जाती है, और अपनाव के साथ–साथ हमारी असंख्य भावनाएँ उससे सम्बन्धित होकर ऐसी जाग उठती है कि फिर उनको सुलाना कठिन है। वे जागकर एक प्रेरणा भरती है और तब हम समझते हैं कि कवि इतना प्रतिभा – सम्पन्न और अन्तर्दर्शी है।'' इस प्रकार **आत्मानुभूति गीतिकाव्य की आभ्यान्तर विशेषता सिद्ध होती है।**

गीतिकाव्य की बाह्य विशेषताएँ – रागात्मकता, वैयक्तिकता और कोमल–भावों की सघनता की स्वानुभूति पर अवलम्बित रहती हैं। अनुभूति की तीव्रता कवि को गाने के लिए प्रेरित करती है और वह स्वाभाविक रूप से गा उठता है। अतः गीतिकाव्य में गेयता भी स्वतः सिद्ध सी है। गेयत्व का एक और रहस्य है। किसी भी भाव का अनुभव हम बार–बार करना चाहते हैं। गीत की स्वर लहरियाँ बार–बार वहीं जाकर अनुभूति पर प्रभाव डालती हैं। स्वर की दीर्घता और संक्षिप्तता अनुभूतियों को उकसाती है, उसकी कोमलता कानों को मधुर लगती है और संवादन कल्पना को सजग और विकसित कर देता है। इस प्रकार **गीत की गेयता – उसका आवश्यक गुण है।**

गीतिकाव्य का सम्बन्ध हृदय से है। अतएव उसका अन्तरंग अथवा वस्तुतत्त्व हृदय के अनुरूप ही कोमल, सरस और भावनापूर्ण होना चाहिए। भावना की सुकुमारता के साथ ही भाषा भी सरल, मधुर और व्यंजक होनी चाहिए। उसका प्रकरण सुन्दर, मनोहर, संक्षिप्त होने पर ही प्रभावोत्पादक बनता हे। उसमें कल्पना का नवीन और उन्मुक्त होना भी आवश्यक है। भावों की अभिव्यक्ति तीव्रतम होनी चाहिए, जिसका प्रभाव अधिकसे अधिक पड़े। साथ ही भाव विच्छिन्न और अस्पष्ट न हों। सुकुमारता की रक्षा के लिए संगीत का प्रधान्य तथा कोमल रसों का समावेश होना अत्यन्त आवश्यक हे। इसलिए शान्त, श्रृंगार और वात्सल्य – गीतिकाव्य के प्रिय रस रहे हैं।

गीतिकाव्य का सम्बन्ध कोमल भावों से माना गया है, न कि परुष भावों से। जब हृदय में कोमल भाव उमड़ते हैं तभी कवि–कण्ठ से संगीत मुखरित होने लगता है।, वह गुनगुनाते लगता है। परुष भाव के आवेग के समय वह नहीं गुनगुनाता है। कोमल भाव हृदय को द्रवित कर देते हैं और उनका आवेग भाव को घनीभूत बना देता है। इसी कारण गीतिकाव्य में कोमल भावों की सघनता रहती है। कवि आद्यन्त एक ही भाव मंत्रजाल में आबद्ध रहता है। इसी कारण गीन आरम्भ से अन्त

तक भाव की एकता बनी रहती है। बाबू गुलाबराय के अनुसार–'गीतिकाव्य में कवि जो कुछ कहता है, अपनी निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता रहती है। यह रागात्मकता आत्म–निवेदन के रूप में प्रकट होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाए रखने के लिए उसका अनेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक है। आकार ही इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है।''

उपर्युक्त सम्पूर्ण विशेषताओं को हम संक्षेप में इस प्रकार रख सकते हैं – **संगीत से पूर्ण भावाभिव्य, अन्तर्जगत का चित्रण, प्रकरण अथवा भावना की सुन्दरता और व्यंजकता, शब्दों का मधु चयन, भाषा का भावना से सामंजस्य, साक्षात् प्रभाव और संक्षिप्ता।** उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर गीतिकाव्य की निम्नलिखित परिभाषा निर्धारित की जा सकती है – **कविता की मुख्य प्रेरणा – आत्मानुभूति जब मधुर शब्दों द्वारा स्वाभाविक गीतिमय और गेय स्वर–लहरी में तीव्रता के साथ प्रकट होती है, उसे 'गीति' कहा जाता है।**

जहाँ गीतिकाव्य से सम्बन्धित एक भ्रम का निवारण कर लेना चाहिए। साधारणतः यह समझा जाता है कि प्रत्येक गीति या गान गीतिकाव्य के अन्तर्गत ले लिया जाता है। परन्तु **गीतिकाव्य की परिधि में केवल वही पद आ सकते हैं, जो कवि की अपने रूप में प्रकट करने वाले हों**, अनय पद नहीं। इसी प्रकार कवि के स्वानुभूति–सम्बन्धी वे कथन भी इस क्षेत्र से बाहर हैं, जो सहज तथा स्वाभावित नहीं, साथ ही, वे जो गाये नहीं जा सकते या जिनमें नीति, उपदेश का किसी प्रकार का वर्णन रहता है। गान को इसके अन्तर्गत इसलिए नहीं माना जा सकता – क्योंकि गान या पद उन्हें कहते हैं। जो संगीत के स्वरों के नियमानुसार साज पर या बिना साज की सहायता से भी गाये जा सकें, उनमें आत्मानुभूति हो या न हो। गीति में आत्मानुभूति का होना पहली शर्त है। इसलिए आत्मानुभूति को गीति का मेरूदण्ड माना जा सकता है।

गीति को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं – **(1) शुद्ध गीति,** और **(2) प्रगीत मुक्तक।** शुद्ध गीति में स्वानुभूति निरूपण करने वाले गीत आते हैं, जिनमें प्रायः प्रथम या द्वितीय पंक्ति, टेक के रूप में पद पूरा होने पर दुहराई जाती है। इनमें संगीत का प्राधान्य रहता है। **प्रगीत मुक्तक** में अन्य छन्द आते हैं, जिनमें स्वानुभूति का तीव्र प्रकाशन संगीतात्मक शब्दों में होता है : वे ललित स्वर के साथ पढ़े जा सकते है : शास्त्रीय पद्धति पर साज पर चाहे न गाये जा सकें। इस दृष्टि से देखने पर भारतीय साहित्य का अधिकांश गीतिकाव्य गीति के क्षेत्र से बाहर हो जाता है, क्योंकि उसमें उपर्युक्त दोनों विशेषताएँ एक साथ नहीं मिलतीं। विद्यापति तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों ने राधाकृष्ण की लीला का वर्णन एक दर्शक के रूप में किया है और पद के अन्तिम चरण में अपनी छाप डालने के साथ, यह भाव भी प्रकट कर दिया है कि उस वर्णन में वे भी कहीं दर्शक के रूप में और कहीं वर्णन करने वाले के रूप में उपस्थित हैं। इस प्रकार पूरे गीत में कवित की स्वानुभूति अपने रूप में न होकर दूसरे की अनुभूति के रूप में हुई है। अतः ऐसे पदों को शुद्ध गीति भावना के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। सगुणोपासक भक्त कवियों के गीतों में जहां भी राम या कृष्ण की लीला का वर्णन है, वहाँ पर न सूर में, न उनके साथियों में, न तुलसी में ही शुद्ध गीतिभावना पाई जाती है। केवल उनके विनय के गीतों में गीतों में ही गीति–भावना का सहज रूप विद्यमान मिलता है। सूर के 'विनय के पदों' तथा तुलसी की 'विनय–पत्रिका' के अधिकांश पदों में विनय–गीतों की उत्कृष्ट भावना खेलती मिलती है।

विद्वानों ने आकार और वृत्ति के अनुसार गीति काव्य को निम्नलिखित 12 वर्गों में विभाजित किया है।

(1) प्रेमी गीत, (2) व्यंग्य गीत, (3) धार्मिक गीत, (4) शोक गीत, (5) युद्ध गीत, (6) वीर गीत, (7) नृत्य गीत, (8) सामाजिक गीत, (9) उपालम्भ गीत, (10) गीति–नाट्य, (11) सम्बोधन गीत और (12) सामेट–चतुर्दशापदी गीत।

इन वर्गों के अतिरिक्त हिन्दी में आजकल राष्ट्रीय गीत, उपेशात्मक गीत, विचार–प्रधान गीत आदि अनेक प्रकार के गीत और लिखे जाने लगे हैं।

गीतों के उपर्युक्त सम्पूर्ण को मोटे रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – **लोकगीत और साहित्यिक गीत।** गीतिकाव्य की उत्पत्ति वास्तव में लोक गीतों के रूप में हुई थी। साहित्यिक–गीत उसी का विकसित रूप है। लोकगीत जन साधारण के जीवन के अधिक निकट और उससे धुले–मिले रहते हैं। उनमें जीवन की वासना, घृणा, प्रेम, लालसा, उल्लास, विषाद आदि की उन स्वाभावित अनुभूतियों का चित्रण होता है, जिन पर सामाजिक शिष्टाचार का प्रभाव नहीं होता। उनमें वर्णत–शैली आदि की कृत्रिमता न होकर पूर्ण स्वाभाविकता रहती है। न उन पर साहित्यिक रूढ़ियों और प्रतिबन्धों का ही कोई प्रभाव होता है। वे मानव मन की सहज स्वाभाविक अनुभूतियों के अधिक निकट होते हैं। इसलिए उनमें हमारे भाव, अनुभूतियों और जीवन का शुद्ध और यथार्थ रूप अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ प्रकट हो जाता है।

''लोकगीत वस्तुतः उस मानव–संस्कृति और समाज के प्रतिनिधि हैं जो कि नागरिक वातारण और कलात्मक से दूर–ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। शिष्ट, मर्यादित और कलात्मक गीत समाज के केवल उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि नागरिक तथा सुसंस्कृत है। इसलिए लोकगीत किसी भी देश की जन–संस्कृति, विचारधारा और चिन्तन–पद्धति की जानकारी में साहित्यिक गीतों की अपेक्षा अधिक सहाकय होते है।''

साहित्य विवेचन

लोक–गीत गीतिकाव्य के 'अविकसित' और साहित्यिक गीत 'विकसित' अवस्था है। साहित्यिक–गीत इसी लोकगीत का कला से सज्जित, साहित्यिक–भाषा से सुशोभित, परन्तु सामाजिक–शिष्टाचार के बन्धनों सो बोझिल रूप होता है। उसमें अनुभूति की गहनता तो होती है, परन्तु लोकजीवन की वह स्वाभाविकता और सहजता नहीं आ पाती, जो लोकगीतों की अपनी विशिष्ट निधि और विशेषता है। लोक गीत का गायक सामाजिकता में अपने व्यक्तित्व को तिरोहित कर देता है। ये लोक गीत विभिन्न संस्कारों, उत्सवों, शारीरिक श्रमों के अवसरों, घरेलू कार्यों आदि – सभी मौकोंपर गाये जाते हैं। इनमें हृदय का उत्साह और मनोरंजन की भावना निरन्तर विद्यमान रहती है। दूसर, लोकगीत पारिवारिक सम्बन्धों से सम्बन्धित रहते हैं, जिनमें स्त्रैण भावना का प्रधान्य रहता है। साहित्यिक गीतों में कोमलता मिश्रित मौरूष भावना का प्राधान्य पाया जाता है। ये गीत विशिष्ट वर्ग के होने के कारण इनका प्रभाव क्षेत्र सीमित रहता हे। इसके विपरीत, लोक गीत सामाजिक जीवन के अधिक निकट होने के कारण अपने प्रभाव–क्षेत्र का निरन्तर विस्तार करते रहते हैं। उनमें कवि के व्यक्तित्व की प्रधानता रहती है।

गांवों में प्रेम संयोग–वियोग, विवाह, बेटी की विदाई आदि से सम्बन्धित अनेक सुन्दर गीतों का प्रचलन हे। इनमें यद्यपि कलात्मक सौन्दर्य अधिक नहीं रहता, परन्तु इनके भाव–सौन्दर्य की तुलना में अधिकांश साहित्यिक गीत फीके पड़ हाते हैं। एक गीत दृष्टव्य है – बेटी की विदा का प्रसंग है। ससुराल जाते समय बेटी अपने मायके के लोगों के भावों का संकेत कितने मार्मिक ढंग से करती है–

''साव सेंदुरा माँग भरी वीरन, चुनरी रँगायो अनमोल।

माया ने दीनों नौ मन सौनवाँ, कि ददुली ने लहर पटोर।।
भय्या ने दीनों चढ़नों चढ़न को घोड़िला, भौजी मोतिन को हार।
सावन सेंदुरा

....

माया के रोवे में नदिया बहित है, ददुली के रोये सागर पार।
भय्या के रोये पटुका भीजत है, भौजी दुइ दुइ आँस।।
साव सेंदुरा माँग भरी वीरन, चुनरी रँगायो अनमोल।।

पारिवारिक–संस्कृति की विशेषता को लेकर चलने वाली भावधारा इस गीत में जितनी गहरी है, उसके भीतर प्रतिध्वनित व्यंग्य उतना ही प्रखर है। इसी कारण **हमारे लोक गीतों का जितना सांस्कृतिक सहत्त्व है, उतना साहित्यिक गीतों का नहीं।** साथ ही स्वाभाविकता, तीव्रता, सघनता और गहरे पारदर्शी एवं हृदय–द्रावक संकेतों से जितने हमारे लोकगीत ओतप्रोत हैं, उतने साहित्यिक गीत नहीं। आज हिन्दी में लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके है। अनेक विद्वानों, पर्यटकों आदि ने इस क्षेत्र में कठिन परिश्रम कर उसका संग्रह किया है। यहाँ लोकगीतों का विवेचन इसलिए अपेक्षित था कि अधिकांश विद्वान गीति–काव्य के इस सर्वाधिक उपयोगी तथा सर्वश्रेष्ठ अंग को, गीतिकाव्य का विवेचन करते समय, उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं। लोकगीतों का प्रचलन साहित्यिक गीतों से बहुत पुराना है, परन्तु हिन्दी गीतिकाव्य के विकास के साथ–साथ इनका विकास दिखाने से निबन्ध का कलेवर बढ़ जाने का भय है। इसलिए यहाँ हिन्दी के साहित्यिक गीतिकाव्य का संक्षिप्त इतिहास ही अपेक्षित है, जो इस प्रकार है –

हिन्दी–गीतिकाव्य अपनी परम्परा के लिए संस्कृति–साहित्य का ऋणी है। इसका इतिहास वेदों से आरम्भ हुआ माना जा सकता है। सामवेद–संगीतात्मक गीतों का ही संग्रह है। स्वयं वेदों को गायकों ने वेदों के 'गीत' कहा है। वैदिक सूक्तों में नाना देवताओं से यज्ञ में पधारने, भौतिक सौख्य सम्पादन तथा आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि उन्मीलित करते हुए नाना प्रकार के छन्दों में स्तुति की गई है। उनके रूपों के भव्य वर्णन में कवि की कला का विकास और उनकी प्रार्थनाओं में कोमल भावों तथा सुकुमान हार्दिक भावनाओं की रुचिकर अभिव्यंजना हुई है। उषा–विषयक मन्त्रों में सौन्दर्य–भावना का अधिक्य है, इन्द्र–विषयक मन्त्रों में तेजस्विता का प्राचुर्य है। उषा विषयक ऋचाएँ नितान्त सरस सहज तथा भव्य भावना से परिपूर्ण है। उनमें उषा के विभिन्न रूपों का चित्रण है। एक श्लोक द्रष्टव्य है – कवि की दृष्टि उषा के रम्य रूप पर पड़ती है और वह उसे एक सुन्दर मानवी के रूप में देखकर प्रसन्न हो उठता है। वह कहता है –

कन्येव तत्वा शाशदाना एषि देवि देविमयक्षमाणम्।
संस्मयमना सुवतिः पुरस्तादाविर्वक्षासि कृणुषे विभाती।।

– ऋग्वेद, 11/133/10

अर्थात् – ''हे प्रकाशवती उषा ! तुम कमनीय कन्यका की भाँति अत्यन्त आकर्शणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो तथा उसके सम्मुख स्मित–वदना युवती की भाँति अपने वक्ष को आवरण–रहित करती हो।'' यहाँ उषा की कुमारी रूप की कल्पना है। स्मित–वदना सुन्दर रूप को प्रकट करने वाली युवती कन्या की कल्पना सूर्य के पास प्रण–मिलन की भावना से जाने वाली उषा के ऊपर कितनी सटीक तथा सरस है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इस प्रकार के सुन्दर भावपूर्ण गीतों से ओतप्रोत है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आकर 'गीत' शब्द का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ। 'गीता' का अर्थ भी यह है – जो गाया जा सके या गाया गया हो। वैदिक साहित्य के पश्चात् बौद्ध– साहित्य की

थेरी–गाथाओं का स्थान आता है। उनमें वैराग्य के प्रति हार्दिक राग और उत्साह है। वास्तव में 'गाथा' शब्द का अर्थ 'गीत' ही है। कबीर पर इन थेरी–गाथाओं का बहुत प्रभाव पड़ा था। उदाहरण के लिए, 'थेरी गाथा' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

''काल का भवरण्य सदिया वेलितग्गा मय युद्धजा अदु।

ते जराय सालवख्य सदिया सच्चावादी वचन अनजथा।।

अर्थात्–भौंरे के समान मेरे काले, चिकने और घुँघराले केश बुढ़ापे के कारण आज मन और बल्कल जैसे हो गये हैं। परिवर्तन का चक्र इसी क्रम में चलता है। सत्यवादी की यह बात झूठ नहीं है।''

'वाल्मीकि रामायण' को गेय और पाठ्य–दोनों ही माना गया है। कालिदास का 'मेघदूत' खण्डकाव्य होते हुए भी उसमें वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है जो उसे गीतिकाव्य के निकट खींच लाती है। इससे आगे चलकर प्राकृत और अपभ्रंश के गीतों की एक परम्परा अक्षुण्ण बनी रही है। इस काल में वीर–रस के ओजपूर्ण और प्रेम के कोमल गीतों की रचनाएं हुई, किन्तु वीर–गीत भाव की न्यूनता के कारण साहित्य में अच्छा स्थान नहीं पा सके। हिन्दी के आदि युग तक इन वीर–गीतों का खूब प्रचलन रहा, परन्तु बाद में दासता के साथ ही लुप्त से हो गये। वीर गीतों में प्रायः अतिशयोक्ति की ही प्रधानता रहने के कारण अनुभूति की तीव्रता और सघनता विच्छिन्न हो जाती है। इसी कारण वे अधिक प्रभावित नहीं कर पाते।

संस्कृत में गीतिकाव्य का वास्तविक, संस्कृत और उन्नत रूप, आधुनिक अर्थ में गीतिगोविन्दकार जयदेव में मिलता है। उनके गीत राम रागिनियों में बँधे हुए हैं। उनकी कोमलकान्त पदावली द्वारा अत्यन्त सरस गीतों की रचना हुई है। जयदेव माधुर्य को अपनी कविता का सबसे बड़ा गुण समझते थे और उसी माधुर्य के कारण उनका नाम आज तक संस्कृत के प्रमुख गीतकारों में सम्मानपूर्वक लिया जाता है। जयदेव से यह परम्परा विद्यापति और चण्डीदास को मिली। विद्यापति के पदों में पद लालित्य, सरसता, हृदय का रस और उक्ति–वैचित्र्य–सभी कुछ है। जयदेव एक प्रकार से क्लासिकल परम्परा के गीतकार है। इसलिए उनके गीतों में लोकगीतों का स्पर्श नहीं मिलता। विद्यापति जयदेव से प्रभावित अवश्य है, परन्तु जयदेव के गीतों में लोक–सुलभ भावना इतनी साफ और सीधी शैली में नहीं उतर पाई है, जितनी कि विद्यापति में। विद्यापति के गीतों में यद्यति अलंकार, रस, नायिका–भेद, साहित्यिक–प्रयोग आदि परम्परागत है, उनकी शौली प्राचीन संस्कृत तथा अपभ्रंश के प्रभाव से ओतप्रोत है, फिर भी वे लोकगीत–परम्परा के बहुत अधिक निकट हैं। इसी कारण भाव–सौन्दर्य, भाव–विस्मृति, संगीतात्मकता और वेदना की तीव्रता में जयदेव कभी कभी उनसे पीछे रह जाते हैं। विद्यापति का एक पद द्रष्टव्य है –

''नन्दक नन्दन कदम्बक तरुतर।
धिरे–धिरे मुरलि बजाव।।
समय संकेत निकेतन बइसल।
बेरि–बेरि बोल पठाव।।
सामरि तोरा लागि, अनुखन विकल मुरारि।।
जमुना का तिरे उपवन उदवेगल, फिरि–फिरि ततहि निहारि।
गोरस बेचए अइबत जाइत, जनि–जनि पुछ बनमारि।।''

इसी प्रकार के गीतों से प्रभावित होकर विद्वानों ने हिन्दी–गीतिकाव्य की स्वतन्त्र परम्परा का आरम्भ और विकास विद्यापति से माना है।

विद्यापति के उपरान्त हिन्दी में गीतिकाव्य के दर्शन सर्वप्रथम कबीर आदि सन्त–कवियों के

काव्य में होते हैं। कबीर ने विरह–निवेदन के रूप में सुन्दर गीतों का सृजन किया है। थेरी–गाथाओं की दुःखवादी वैयक्तिक भावना के पदों में प्रांजल रूप में प्रकट हुई है –

''बालम आव हमारे गेह रे।

तुम बिन दुखिया देह रे।।

आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बिन धरैन धीर रे।

ज्यूँ कामी कूँ कामिनि प्यारी, ज्यूँ प्यासे को नीर रे।।''

किन्तु वैयक्तिक–भावना का आरोप होते हुए भी आराध्य निराकार होने के कारण वह आत्मीयता कबीर में नहीं आ सकी जो मेरी में साकार प्रेमी के लिए आत्म निवेदन में है। कबीर के –

''साँई बिन दरद करेजे होय।

दिन नहीं चैन, राम नहिं निंदिया, कासे कहूँ दुःख रोय।।''

की तुलना में मीरा के –

''दरस बिन दुखन लागे नैन।

जब से तुम बिछुरे पिय प्यारे, कबहुँ न पाये चैन।।''

में कहीं अधिक गहनता और कार्मिकता है।

सूर

विद्यापति और कबीर की गीत – परम्परा का प्रभाव सूर पर अधिक पड़ा। सूर में भाावुकता और हार्दिक वृत्ति बहुत प्रबल है : इसलिए उनके गीतों में विदग्धता और तन्मयता की मात्रा बहुत गहरे रूप में उतरी है। उनके पदों में वात्सल्य, शान्त और श्रृंगार रस की प्रधानता के साथ आत्म–निवेदन, वियोग–वर्णन तथा बाल और यौवन के श्रृंगारी चित्र अधिक मिलते हैं। प्रबन्धात्मकता के होते हुए भी हार्दिकता के योग से उन पदों का गीत–सौन्दर्य विशेष निखर सका है। कृष्ण के वियोग में विरहिणी गोपियों की आँखें निरन्तर आँसू बरसाती रहती हैं –

''निसि दिन बरसन नैन हमारे।

सदा रहित पावस रितु हम पै, जब तैं स्याम सिधारे।।

दृग अंजन न रहत निसि–बासर, कर कपोल भए कारे।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच पनारे।।''

विरह की यह सार्वभौमिक दशा है और इन शब्दों में उसकी वही सजीवता और मार्मिकता सूर की भावुकता से जीवन्त हुई है। तुलसी में इस तरह की भावुकता की कमी तो नहीं है, लेकिन उनमें सामाजिकता का आग्रह आत्मीयता से अधिक है। फलस्वरूप उनकी रचनाओं में अनुभूति की अपेक्षा सामूहिक चेतना का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। फिर भी 'विनय–पत्रिका' के गीतों की तन्मयता और उल्लास गीतिकाव्य की अमूल्य निधि हे। आगे की पंक्तियों में आत्म–समर्पण की कितनी सहज अभिव्यक्ति हुई है –

''जाऊँ कहाँ तजि तिहारे।

काकौ नाम पतित–पावन जग, कोहि अति दीन पियोर।।''

रीतिकालीन काव्य में (जैसे–रसखान, घनानन्द, बोधा, आलम, ठाकुर आदि में) हमें स्वानुभूति के दर्शन लौकिक के आश्रय में होते हैं, पर उनमें भी कृष्ण–भक्ति की छाया है। इन गीतों को हम शुद्ध गीतिकाव्य के अन्तर्गत न मानकर प्रगीत मुक्तकों में ही मानेंगे–क्योंकि इनमें कोमल भावों का घनीभूत प्रकाशन, स्वानुभूति और संगीतात्मक मधुर शब्दावली के दर्शन होते हैं। इनके अतिरिक्त

रीतिकालीन शेष साहित्य में गीतों का विकास रूक–सा गया था।

एक विद्वान ने भक्ति, रीति और भारतेन्दु–युगीन गीति काय का विश्लेषण करते हुए लिखा है –

''मध्यकालीन गीति काव्य का सबसे बड़ा दान हिन्दी साहित्य को यह मिला कि व्यक्ति के अपने हास–रोदन के माध्यम से सामूहिक दुःख–सुख को वाणी का रूप मिला। उन दिनों जब लोक–संवेद्य भक्ति–गीतों की बाढ़ सी आई थी, लोक जीवन की संगीतिकता के शास्त्रीय पुनस्थान के प्रयत्न भी चल रहे थे। भाव और भाषा की साहित्यिक सुषमा का श्रृंगार किया जा रहा था। काव्य के क्षेत्र में स्वर और वाणी को समान अधिकार मिल रहा था। रीतिकालीन आलंकारिक मोह से गीत–सौन्दर्य को धक्का अवश्यक लगा, किन्तु उसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतेन्दु–युग के गीतों ने सर्वथा नवीन और ऐश्वर्यमय युग की सूचना दी। शास्त्रीय संगीत के नियमित बन्धनों में जो वाणी रुद्ध थी, भारतेन्दु की साधना से उसे मुक्ति मिली।

आधुनिक काल में भारतेन्दु–युग तथा बीसवी शताब्दी के आरम्भ में पुनः गीतिकाव्य का उत्कर्ष आरम्भ हुआ था। भारतेन्दु और सत्य नारायण ने ब्रजभाषा की पद–शैली से राधा–कृष्ण की प्रेमानुभूति के सुन्दर गीत रचे। इस प्रकार के गीतों में वियोगी हरि के गीत भी सुन्दर और मार्मिक बन पड़े। यद्यपि इनके पहले भी गीतों में परिवर्तन होने लगा था, किन्तु उसका पूर्ण विकास प्रसाद–युग में आकर हुआ। अतएव शुद्ध रूप में आधुनिक रीति–काव्य का आरम्भ प्रसाद से ही माना जा सकता है। द्विवेदी युग – भारतेन्दु युग और प्रसाद युग का सन्धि–काल है। इस युग में वस्तु–तत्व और वर्णन–प्रणाली का ही प्राधान्य रहा। इस युग के गीतिकारों में श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त प्रधान है। गुप्तजी ने यद्यपि किसी स्वतंत्र गीतिकाव्य की रचना नहीं की, परन्तु उनके गीत प्रबन्ध–काव्यों में यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। 'साकेत' और 'यशोधरा' के कतिपय गीत हिन्दी गीति–साहित्य की अमूल्य निधि है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह की 'कादम्बिनी' के कतिपय गीत तथा शिवाधार पाण्डेय के गीत सहृदयता से ओत–प्रोत है। आगे चलकर, द्विवेदी–युग का गीतिकाव्य का प्रच्छन्न स्रोत छायावाद में आकर ही पूर्णरूपेण प्रस्फुटित हो सका।

प्रसाद–युगीन गीतों का विवेचन करने से पूर्व, भक्तिकालीन गीति काव्य और आधुनिक गीतिकाव्य का पारस्परिक अन्तर देख लेना आवश्यक है। भक्तिकाल में शास्त्रीय संगीत के नियमित बन्धनों में जो वाणी रुद्ध थी, भारतेन्दु की गीति–साधना से उसे मुक्ति मिली। उसी समय से शास्त्रीय संगीत का आधार न ग्रहण कर उसे लोक–ग्राह्य बनाने के प्रयत्न आरम्भ हुए। महाराष्ट्र के भातखण्डे स्कूल और बंगाल के रवीन्द्र स्कूल ने काव्य और संगीत की संगति के लिए उसका परिष्कार करना आरम्भ किया। इस प्रकार उस पर संगीत का भी प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव संगीतात्मकता पर ही नहीं पड़ा, बल्कि काव्य के अन्तर्दर्शन पर भी छाप पड़ी। गीति–कविता धीरे–धीरे सामूहिक धरातल से हटकर आत्मनिष्ठ बनती चली गई। अब उसमें संगीतात्मकता गौण होकर, उसका प्रधान उपजीव्य हृदय के भव बने। इस प्रकार पिछले गीतों से यह पूर्णतया पृथक सी हो गई। इसने अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम कर ली। भक्तिकालीन गीत मुख्यतया गाने के लिए रचे गये थे। आज की गीति–कविता मुख्यतः कविता है, संगीत नहीं। इसके गीतों में अनुभूति प्रधान होती है। उन गीतों का अन्तर वस्तु–प्रेम था, इसका आधार अनन्त जगत है। उनके वैयक्तिक अनुभूति वस्तु–परक थी, इनका प्रत्यक्ष है। छायावाद ने आकर तो गीतिकाव्य को विषय, भाव और वैचित्र्य की दृष्टि से छन्द और संगीतिकता का बहुत बड़ा वैभव प्रदान किया। स्वानुभूति मात्र अपने सुख–दुःख, विरह–मिलन के हास–अश्रु की लड़ियों का ही श्रृंगार नहीं करती– देशात्मबोध,

मानवीयता, प्रकृति–चित्रण, आत्म–दर्शन आदि की विविधता से वह ऐश्वर्यशालिनी है। नवीन छन्द, नई ध्वन्यात्मकता, नई उपमाएँ, अभिव्यंजना के नये प्रकार, नई अर्थशक्ति आदि के समावेश से यह समृद्ध बन गई है। छायावादी–युग के उपरान्त रचे गीतों में से अधिकांश छायावाद से ही प्रभावित रहे। इसलिए हिन्दी गीतिकाव्य का चरमोत्कर्ष हमें छायावादी–गीतों में ही मिलता है।

प्रसाद ने अपने नाटकों में समाविष्ट गीतों के रूप में अत्यन्न सुन्दर गीत लिखे। **''अरुण यह मधुमय देश हमारा''** गीत अपनी मधुरिमा और भाव सबलता के लिए प्रसिद्ध है। उनका 'बीती विभावरी जाग री' गीत हिन्दी का अमर गीत माना जाता है। पन्त, निराला और महादेवी ने गीतिकाव्य के इस नवीन रूप के प्राण फूँके। महावेदी की भाव–सबलता और तन्मयता उनके स्फुट गीतों में साकार हो उठी। गुप्त, प्रसाद, महादेवी, राम कुमार वर्मा, नवीन आदि के गीत संगीत की देशी प्रणाली पर अवस्थित हैं। सूर, तुलसी और मीरा की गीति–शैली से उनमें विशेष भेद नहीं है। किन्तु पन्त और निराला ने प्रचलित प्रणाली से भिन्न संगीत की सृष्टि की। बँगला में रवीन्द्र–स्कूल ने जिस प्रकार गीतिकाव्य में संगीत के नए प्रयोग किये, उसकी प्रकार यह कार्य हिन्दी में पन्त और निराला ने किया। 'ज्योत्सना' के नाट्य–गीतों के बाद 'युगान्त' से पन्त की काव्यधारा बदल गई। अतः गीति–काव्य के क्षेत्र में निराला और महादेवी के गीत ही धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते रहे। निराला के अधिकांश गीतों में उनकी कला अभिव्यक्ति के प्रति जितनी सचेष्ट है उतनी ही अभिव्यक्ति के प्रति तन्मयता भी है। परन्तु उनकी 'गीतिका' के गीतों में रागात्मक उत्तेजना के स्थान पर सांकेतिक अभिव्यंजना गहरी होने के कारण तन्मयता के बजाय संगीतात्मकता का प्राधान्य रहा है। महादेवी के गीत सहज गतिशीलता, आत्म–विस्मृति, भाव–विदग्धता और संगीत में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी रचनाओं में वाणी की प्रधानता और चित्रात्मकता का अनोखा सौन्दर्य है, इसलिए उनमें रस और सौन्दर्य का अपूर्व अम्मिलन संगठित हुआ है। पन्त में प्रतीकात्मक सामर्थ्य अद्‌भुत हैं, गीति–प्रतिभा अपेक्षाकृत कम। शब्द–सौन्दर्य, चित्रकला, लाक्षणिक वैभव, ध्वन्यात्मकता आदि में पन्त अप्रतिम हैं। किन्तु जिस जीव्र आत्मानुभूति से गीति–कविता का जन्म होता है, पन्त में उसकी थोड़ी सी कमी रही है।

प्रसाद और निराला आधुनिक गीति–युग के दो छोर हैं – महादेवी बीच की कड़ी।

इन कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करते हुए अत्यन्त भावुक गीतों का निर्माण किया है। प्रकृति को सचेतन रूप में देखने वाले कवियों में पन्त और महादेवी प्रमुख हैं। दिनकर, नवीन, नेपाली, अंचल, सुमन, रागेय, राघव आदि कवियों के गीतों में देश–प्रेम और नव–जागरण का स्वर प्रबल है। इनमें आदेश की प्रधानता है। प्रसाद और पन्त में आवेश के स्थान पर सांस्कृतिक एवं कोमल भावनाओं का ही विकास हुआ है, जो गीतिकाव्य का सार है।

हमारे छायावादी गीतों पर अंग्रेजी के कवियों, विशेषकर – वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, बायरन आदि का भी विशेष प्रभाव पड़ा था। इस प्रभाव के फलस्वरूप भारत एवं प्रकृति–प्रेम से सम्बन्धित गीतों का विकास हुआ। साथ ही नारी–प्रेम का समावेश भी इसी काल में हुआ। नारी के सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण तो पहले भी हुआ करता था, परन्तु उस चित्रण में प्रगीतात्मकता नहीं आने पाई थी। नारी के सौन्दर्य, स्वभाव, कोमलता, करुणा, शान्ति, सहनशीलता एवं संवेदनशीलता आदि गुणों की ओर संकेत करते हुए प्रेम की अभिव्यक्ति इस युग में हुई अवश्य, परन्तु प्रधान आकर्षण नारी के रूप में सौन्दर्य का ही रहा।

बच्चन की 'मधुशाला' एक भिन्न प्रकार की मस्ती और खुमार से भरे हुये गीतों को लेकर आई, परन्तु यह खुमार शीघ्र ही समाप्त हो गया।

इसके पश्चात् उनके निशा–निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' आदि में सुन्दर एवं संयत गीतों के दर्शन हुए। इनके अतिरिक्त उदयशंकर भट्ट, रमाशंकर शुक्ल, तारा पाण्डेय, नरेन्द्र आरसी, केसरी, सुमन, सोहनलाल द्विवेदी, सुधीन्द्र, नेपाली, अंचल, वीरेन्द्र मिश्र, बलवीर सिंह रंग, नीरज, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, घनश्याम अस्थाना, सोम ठाकुर, भारत भूषण, शचीन, भटनागर, जगत प्रकाश चतुर्वेदी, निखिल सन्यासी आदि अच्छे गीतकार हैं। इनमें से कुछ छायावादी हैं और कुछ प्रगतिवादी तथा अन्य प्रयोगवादी।

युवक वर्ग अधिकांशतः प्रगतिवादी और प्रयोगवादी है। इसके और छायावादी गीतों में प्रधान अन्तर यह है कि आज वासना अपने स्वाभाविक रूप से झाँकने लगी है जबकि छायावाद में उस पर कला का आवरण पड़ा हुआ था। आज के गीतों में कला का स्तर अधिक ऊँचा नहीं है, परन्तु अनुभूति की तीव्रता और सघनता अनुपम है।

गीतिकाव्य का विवेचन करते हुए प्रसिद्ध आलोचक हंस कुमार तिवारी ने विभिन्न प्रकार के नीतिकारों एवं गीतों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि – "फिर भी हमें स्वीकार करना पड़ता है कि नीति–कविता अपने परमोत्कर्ष पर अभी नहीं पहुंची है। उसमें जिस सर्वजन–संदेद्य विशेषता की अनिवार्यता है, वह गुण अभी इसमें नहीं आ पाया है – न संवेदनीयता में, न संगीतात्मकता में। अतएव अभी हमें उस दिनक की अपेक्षा है, जब गीति–कविताा लोक–जीवन से मिल जाय और कवियों की वाणी जन–जन के अधरों पर थिरक उठे।" परन्तु इधर पिछले दो–तीन दशकों में हिन्दी में अनेक सुन्दर गीतों का सृजन हुआ है और अब भी हो रहा है। इसलिए हिन्दी गीति–काव्य का भविष्य उज्जवल है।

इधर नए की हवा ने हिन्दी गीति–काव्य को भी आक्रान्त कर रखा है। 'नई कविता' और 'नई कहानी' के समान 'नवगीत' का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। इस आन्दोलन के समर्थक 'नवगीत' को नितान्त नवीन मौलिक उपलब्धि या काव्य–रूप घोषित करते हुए उसे पुरानी गीति–परम्परा से सर्वथा भिन्न घोषित कर रहे हैं। यह आत्म–प्रचार का एक नया सस्ता ढंग है, जो समय–समय पर अपनाया जाता रहा है। वस्तुतः 'नवगीत' महारे गीति – काव्य का ही विकसित रूप है। उसे हिन्दी गीति काव्य का नवीन विकसित चरण माना जा सकता है। भावाभिव्यक्ति, गेयता, अनुभूति की सघनता एवं भाषा के अनुक्षाकृत नवीन रूप एवं व्यंजना ने उसे आगे बढ़ाया है।

संदर्भ–सूची

- ❖ आधुनिक हिन्दी कविका में बिम्बविधान – केदारनाथ सिंह
- ❖ आधुनिक कविता का पुनर्पाठ – करुणाशंकर उपाध्याय
- ❖ नई कविता का आत्म संघर्ष – गजानन माधव मुक्ति बोध
- ❖ हिन्दी इतिहास का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- ❖ काव्य के तत्व–देवेन्द्र नाथ शर्मा
- ❖ कई कविता – नंद दुलारे बाजपेई
- ❖ कविता के नए प्रविमान – नामवर सिंह
- ❖ कविता का उत्तर जीवन – परमानन्द श्रीवास्तव
- ❖ हिन्दी साहित्य का इतिहास – पुन लेखन की आवश्यकता
- ❖ आधुनिक हिन्दीर साहित्य का इतिहास – बच्चन सिंह
- ❖ हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह

❖ गीतिकाव्य : स्वरूप और विकास – डॉ0 आर0पी0 शर्मा

Copyright © 2016, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.